International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

गिरिजा कुमार माथुर के काव्य में युगानुकुल बोध

डॉ. हरिराम आलड़िया

सहायक आचार्य एवं विभागाध्यक्ष (हिन्दी),स्वामी विवेकानंद राजकीय महाविद्यालय, खेतड़ी (राज.)–333503

गिरिजाकुमार माथुर हिन्दी की नई काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं। उनके हृदय पर नौ वर्ष की अवस्था में ही काव्य काव्य–संस्कार पड़ चुके थे और वे ब्रजभाषा में कविता लिखने लगे। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में कवि सम्मेलनों वे भाग लेने लगे। ब्रजभाषा में कविता करने के उपरान्त कुछ दिनों तक छायावादी शैली पर भी कविताएं लिखते रहे। अध्ययनकाल के दौरान विक्टोरिया कॉलेज,ग्वालियर में आयोजित कवि सम्मेलन में आपकी छायावादी शैली की कविता सुनकर स्वयं माखनलाल चतुर्वेदी ने कहा था कि यदि तुम इस गीत के आगे अपना नाम न लिखकर महादेवी का नाम लिख दो, तो कोई पहचान नहीं सकता। इस ब्याज स्तुति को सुनकर छायावादी शैली पर रची समस्त कविताएं नष्ट कर दी तथा प्रण लिया कि मैं जब तक अपनी कोई मौलिक राह नहीं ढूंढ नहीं लूंगा, तब तक कोई कविता नहीं लिखूंगा। यह घटना सन् 1937 ई. की थी और तभी से आपने काव्य की परम्परागत राह को छोड़कर नूतन मार्ग अपनाने का संकल्प लिया। इसके उपरान्त माथुर जी ने नये प्रयोग भी आरम्भ कर दिये तथा सन् 1938 तक नये–नये प्रतीक ,नवीन उपमान आदि का प्रयोग करने में अपनी पहचान बना ली।

माथुर जी ने युगानुकुल बोध को की अपनी रचनाओं में खुलकर अभिव्यक्ति की है। कवि ने अपने युग की विषमता, पीड़ा, निराशा, थकान, बढ़ती उदासी, बेचैनी, कुण्ठा, ऊब, पराजय आदि को भली भाँति से अनुभव किया है। मानवता पर होने वाले अत्याचार एवं अनाचार के दर्शन भी किये हैं। साम्रज्यवाद की तानाशाही और उपनिवेशवादी मनोवृत्ति को भी सुहृद कवि ने देखा है तथा जनता की पीड़ा गहराई से अनुभूत किया है। श्री माथुर ने निर्भिकता और एवं निष्पक्षता के साथ अन्याय,दुराचार और अत्याचार का विरोध किया है। उन्होंने लिखा है–

''हमने जीवन की ज्वाला में पाप जलाया सदियों का
इस महायज्ञ से निकला है यह कुलिश नवनी अस्थियों का
मेरी मानवता पर रक्खा गिरि–सा सत्ता का सिंहासन
मेरी आत्मा पर बैठा है विषधर–सा सामंती शासन
मेरी छाती पर रखा हुआ सम्रज्यवाद का रक्त–कलश। ''[1]

कवि ने मात्र शोषण और अन्याय के चित्रण के साथ–साथ उत्पीड़ित मानवता के प्रति सहानुभूति एवं संवेदना भी प्रकट की है। दुःख,दर्द और अभाव की चक्की में पिसने वाली जनता को अधिक समय तक दबा कर नहीं रख जा सकता है। पाप का घड़ा एक न एक दिन अवश्य भरता है। पद–दलित और पीड़ित जनता अपने स्वाभिमान की रक्षार्थ झुकना नहीं जानती बल्कि वक्त आने पर संघर्ष एवं क्रांति के लिए तत्पर हो जाती है–

''इस लाली का मैं तिलक करूँ हर माथे पर
दूँ उन सबको जो पीड़ित हैं मेरे समान
दुःख दर्द,अभाव भोगकर भी जो झुके नहीं,
जो अन्यायों से रहे जूझते वक्ष तान
जो सजा भोगते रहे सदा सच कहने की
जो प्रभुता पद–आतंकों से नत हुए नहीं
जो बिलग रहे पर कुपा न मांगी घिघियाकर

जो किसी मूल्य पर भी शरणागत हुए नहीं।''[2]

स्वार्थ और आप धापी के युग में प्रत्येक व्यक्ति परेशान और व्याकुल है। जीवन की जटिलताओं के कारण किसी भी व्यक्ति को दूसरे के लिए अवकाश नहीं है। जीवन में औपचारिकताओं ने घर कर लिया है जिसके कारण लोग परस्पर एक दूसरे का विश्वास खो चुके हैं। अपनी सुख–सुविधाओं से आगे किसी को सोचने का समय नहीं है। व्यक्ति का आपसी प्रेम और सद्भावनाएं संत महात्माओं के उपदेश तक सिमट कर रह गई हैं। माथुर जी को इस बात की चिंता है कि सच और झूठ में अंतर करना टेढ़ी खीर हो गया है। सम्प्रदाय,धर्म और जातिवाद का जहर आदमी नसों में घुलता जा रहा है। वर्तमान वृद्ध हो गया है और भविष्य आने से डरता है। बड़ी ही भयावह स्थिति में आज का युग पहुँच गया है। 'भटका हुआ कारवां' कविता में सामाजिक यथार्थ की अनुभूति कवि ने इस प्रकार प्रकट की है–

''खत्म हुई पहचान सभी की
अज़ब वक्त यह आया है
सत्य झूठ का व्यर्थ झमेला
सबने खूब मिटाया है
जातिवाद का ज़हर किसी ने
घर–घर में फैलाया है
वर्तमान है वृद्ध
भविष्यत आने से कतराता है
उठती हैं तूफानी लहरें,तट का है आभास नहीं,
पृथ्वी है,सागर है,सूरज है, लेकिन अभी प्रकाश नहीं ।''[3]

आतंकवाद की समस्या सभी देशों के लिए सबसे बड़ी चुनौती बन गई है। कुछ लोगों द्वारा भोली–भाली जनता का ध्यान भटकाने, निहित राजनीतिक और कूटनीतिक स्वार्थों की पूर्ति हेतु बेरोजगार तथा अशिक्षित लोगों को धर्म,जाति,सम्प्रदाय आदि के नाम पर बहका कर आतंकी बना दिया जाता है। ऐसे लोगों का कोई दीन और ईमान नहीं होता है। अपने आकाओं की खुशी के लिए कितने ही निर्दोषों का खून बहाने में कोई हिचकिचाहट नहीं होती है। इसके लिए टाइम बम,मशीनगन,मानव बम,पैट्रोल बम, अपहरण आदि सभी तरह के हथियारों का इस्तेमाल करते हैं। आतंकवादी बच्चे, बूढ़े, मां, बहन, गर्भवती आदि में कोई भेद नहीं करते हैं। खून बहते हुए देखकर उनके दिमाग में होली के उत्सव जैसा जश्न मनता है। संस्कृति और सभ्यता चिंदी–चिंदी बिखर जाती है। आतंकवादी परिवेश का चित्रण कितना समसामयिक बन पड़ा है, निम्न पंक्तियों से स्पष्ट है –

''फैक देता ग्रेनेड
रख देता टाइमबम
भरे बाजारों में,ट्रनों,वायुयानों में
भून देता गोलियों से सड़क चलते लोगों को
बेखबर बच्चों को,ओरतों को,बूढ़ों को
फूंक देता तेल–पैट्रोल के जखीरे
पानी की टंकियों में
छोड़ता है हैजे के कीटाणु
गांवों कस्बों में जहरीला गैस
माताओं की काट लेता है छातियां
क्योंकि मातापन पुरातन है
एक साथ करता है बलात्कार

गर्भिणियों,बुढ़ियों,बच्चियों से ।''[4]

अंग्रेजों की दासता से भारत सन्1947 में आजाद हुआ। आजाद भारत के सपने को साकार करने के लिए अनेक सपूतों ने स्वतंत्रता की यज्ञ बेदी में अपनी आहुती प्रदान की। आजादी के बाद समता और शोषण मुक्त भारत–निर्माण के प्रयास आरम्भ हुए। देश के विकास हेतु अनेक योजनाएं बनाई गई। लोगों ने धैर्यपूर्वक देश के नीति निर्माताओं के प्रयत्नों के परिणामों का इन्तजार किया। अधिक समय तक लोगों में देश प्रेम की भावना बलवती बनकर नहीं रह सकी। लोकतंत्र को स्वार्थतंत्र में बदलते देर नहीं लगी। आजादी का मायना बदल गया। जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों ने शासन को ऐशो आराम का साधन मान लिया तथा जनता के पैसे से अपना घर भरना आरम्भ कर दिया। नीचे से लेकर ऊपर तक भ्रष्टाचार ने अपनी जड़े फेला ली। इसके परिणामस्वरूप देश में कर्मचारी वर्ग भी ऊपरी आमदनी की आस करने लगा। गुंडे और तस्करों को राजनीतिक शरण मिलने लगीं । हर चीच बिकाऊ मानी जाने लगी। कवि के मानस में आजादी की सार्थकता को लेकर अनेक प्रकार के प्रश्न ऊठते हैं –

''सोच रहा हूँ–
क्या आजादी है मेले–ठेले का नाम
सिर्फ तमाशा है परेड का?
सजी झांकियों का?
आजादी का अर्थ,न कुर्सी
बंगला,अमला या धन–धाम
रौब–दांब,भाषण,मालाएं
परमिट,तमगे,और इनाम
+ + + + + + + + + +
टक्कर खाते आम आदमी
हर कागज पर लिक्खा दाम
बिना चढ़ावे के न सरकता
एक इंच भी– पहिया जाम''[5]

बीसवीं सदी वैज्ञानिक और तकनीकी चेतना की है। इसी सदी में दो भयावह विश्व युद्ध भी देखें हैं। छोटे–छोटे युद्ध संसार भर में कहीं न कहीं चलते रहे हैं। मानवीय समता और स्वतंत्रता का विकास भी इसी सदी में सबसे अधिक देखने को मिला है,परन्तु शक्तिशाली राष्ट्रों ने अपनी स्वतंत्रता के छद्‌म आवरण की रक्षा के बहाने तरह–तरह के मारक अस्त्र, विनाशक यंत्र, विषैले रसायन, अणुशक्ति, पर्यावरण विध्वंस और अंतरिक्ष में प्रभुत्व आदि को लेकर संभावित युद्धों हेतु प्रयोगात्मक परीक्षण किये। गिरिजा कुमार माथुर स्वयं इस पर चिंता प्रकट की है– ''...वैज्ञानिक और तकनीकी का पूरा इस्तेमाल मानवीय मंगल यानी सामाजिक,आर्थिक,सांस्कृतिक मुक्ति के लिए नहीं हो पा रहा बल्कि विभिन्न शक्ति–संपन्न देशों द्वारा अपना–अपना प्रभुत्व बनाएं रखने की प्रतिस्पर्धा ने सामूहिक विनाश का चरम संकट उपस्थित कर दिया है।''[6] इस प्रकार विज्ञान और तकनीक का प्रयोग मानवता के विकास का साधन न बनकर शक्तिशाली राष्ट्रों के अहं की पूर्ति का साधन बनकर रह गया। इसके परिणामस्वरूप कमजोर और निर्धन देश भी प्रतिस्पर्धा के मैदान में उतर आये। गरीबी, भुखमरी, रोजगार, शिक्षा, चरित्र जैसी बातें गौण हो गई। विकासोन्मुखी राष्ट्र विकसित राष्ट्रों की मंडी बन गये।विकसित देशों के दोगले व्यवहार के कारण इंसानियत पर पशुता हावी हो गई है –

''अर्थ–उपनिवेश बनते हैं
मूल्य बाजारों में बिकते हैं
विक्रय होता आदर्शों का
देश,व्यक्ति का, संस्कृतियों का

लोकतंत्र भी यहां जाल है
आत्मा,अंतःकरण माल है।
मन वाणी को मुक्त बताकर
अर्थ,काम की क्षुधा बढ़ाकर
मनुज विरोधी स्वार्थ सिद्ध में
मानव की पशुता उकसाकर
पतित अधोमुख ये पूंजीवादी पद्धतियां
हैं जनमत पर पहरा देतीं
सामूहिक हिप्नोसिस की अंधिका रचाकर।''[7]

परमाणु शक्ति–संपन्न देशों ने अपने स्वार्थ के समक्ष जनमत की हमेशा ही उपेक्षा की है। कवि ने उनके अहं को निम्न पंक्तियों चित्रित किया है –

''जनमत ?
जनमत क्या होता है?
जब अणुबम उद्जन–बम
सब उपग्रह,राकेट,जैट,दूरमारक प्रचंड
है हाथ हमारे मृत्यु किरण
तब जनमत जैसी छुद्र वायवी चीजों की है
क्या बिसात!''[8]

बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भौतिकता की अंधी दौड़ के कारण उपभोगतावादी संस्कृति का बोलबाला बढ़ा। मानवीय संवेदनाएं शून्य होती चली गई। व्यक्ति के जीवन में मानवीय रिश्तों का स्थान मशीनों ने ले लिया। भौतिकता की इस प्रतिस्पर्धा में आदमी न जाने कहां खो गया। भौतिक सुविधाओं ने जीवन को सुविधामय तो बना दिया है,परन्तु जीवन की सहजता को जटिलता में बदल दिया है। चिंता और अवसाद ने आदमी के जीवन में घर कर लिया है। मशीनों पर बढ़ती अत्यधिक निर्भरता ने इंसान को मशीन के रूप में बदल दिया है। चित्त की कोमल अनुभूतियां संघर्ष के तले दब–सी गई हैं। आदमी चलती फिरती कब्र बनकर रह गया है। कवि ने अपनी अनुभूति इस प्रकार प्रकट की है–

''एक एक आदमी यहां पर
चलती फिरती कब्र है
ढलती रातों का सन्नाटा
सिमट बना यदि नहीं किसी पल
ठंडी फौलादी हत्या की खूनी दस्तक
यहीं सब्र है–
श्रद्धाओं का स्रोत यहां मरणांतक डर है
वहीं पुरानी नींव,स्तंभ का नया शिखर है।''[9]

इस भयावह स्थिति का चित्रण करने के पीछे कवि का उद्देश्य जनता को भय से आक्रांत करना नहीं है,वरन कवि वस्तुस्थिति का अहसास कराकर जन चेतना का शंख फूंकना चाहता है। प्राचीन कल्पित आदर्शों पर निर्भरता व्यक्ति को अकर्मण्य बना देती है। प्रगतिवादी और क्रियाशील होकर ही इस निराशा के तिमिर को हटाया जा सकता है। इसी चेतना से पूर्ण उनके विचार दृष्ट्व्य हैं–

''यह व्यक्ति और समाज का

उत्तप्त मंथन काल है
संक्रांति की घड़ियां बनी हैं शृंखला
मन को बांधने बढ़ते पतन के हाथ हैं।
है फेन विश का फैलता ही जा रहा
अब डूबता अंतिम ग्रहण की छांह में
आलोक हत नक्षत्र मिट्टी से बना
जिसकी पृथ्वी नाम है।''[10]

गिरिजा कुमार माथुर नगरीय बोध के कवि हैं,फिर भी ग्राम्य–जीवन की सहजता और निःछलता को विस्मृत नहीं किया है। वर्तमान में शहरी जीवन में सर्वत्र उलझनें, तनाव, मानसिक ऊहापोह, ,निराशा और खिन्नता व्याप्त है। मनुष्य विभाजित है,टूआ हुआ है, बिखरा हुआ है। व्यक्ति मन और मस्तिष्क बौना हो गया है। इस विकट स्थिति में व्यक्ति जीने को मजबूर है। व्यक्ति की इस परेशानी को अनेक कविताओं में देखा जा सकता है, उदाहरण के लिए कवि की निम्न पंक्तियां देखी जा सकती हैं–

''नगर ने मुझे बहुत कुछ दिया है
विद्या,नया संस्कार,काम,रोमांस
कुंठा अवहेलना,ठोकरें,अपमान
लेकिन
मुझसे मेरे भीतर का
गाँव–जन्मा सहज प्यार ले लिया है
न बड़ा काम करने दिया है
न छोटा होने दिया है
मामूली आदमी की तरह
जीने का सुख भी
रहने नहीं दिया है।''[11]

इसी प्रकार कवि की कुछ और पंक्तियां दृष्ट्व्य हैं –

''फेंके हुए गुलझट्टे बालों के
सेमली दिमांग में
साँप और साढ़ी के खेल–सी
उलझी चिती–चारों तरफ़
राहें ही राहें हैं
काजल के थूके हुए झाग हैं
चिराग में।''[12]

वैज्ञानिक उपकरणों की तीव्रगामी प्रगति के परिणामस्वरूप परिवर्तित समसामयिक परिवेश पर भी कवि की दृष्टि गई है। कवि ने उन सभी तथ्यों पर दृष्टिपात किया है जो वैज्ञानिक उन्नति से हमारे समकालीन जीवन में परिवर्तन लेकर आये हैं। हमारे दैनिक जीवन की समस्त क्रियाओं को वैज्ञानिक उपकरणों ने प्रभावित किया है। आदमी के हाथ इस्पात के तथा दिल और दिमाग लोहे के हो गये हैं –

"लोहा, सामेंट,कांच,कोलतार
छोरहीन धातु खंभ,अनुलोम ताम्रतार
वर्गकटी चनखारी,पत्थर की रेखाएं

सूखे ठोस उामर की नहर,सड़क–धाराएं
रोशनी–भुजाएं समान्तर खिंची हुई
स्याह धरातल पर बिम्ब–वृत्त डालती हुई
सघन पिंड आयत सफुद पुते
भारी षड्युज,भीम वर्ग उठे
सीमेंटी अठपहलू पेंसिल–सा
समय–संतरी ऊंचा
चमक रहा है चश्मा वृहद् गोल शीशों का
लोहे के दिल दिमाग,हाथ इस्पात के
निरवधि समय को जो अंकों में बांधते।"[13]

'हब्स देश' कविता में भी कवि ने आधुनिक औद्योगिक व रासायनिक युग की स्थितियों का निरूपण किया है–

''देखो, मेरी स्याह बनेली भूमि उर्वरा
जिस पर पिता नील बहता है
उगल रहीं हैं खानें सोना
अभ्रक,तांबा,जस्त,क्रोमियम
टीन,कोयला,लौह,प्लेटिनस
युरेनियम,अनमोल रसायन
क्पोक,सिल्क–कपास,अन्न धन
द्रव्य फॉसफेटो से पूरित
मेरा वह नगराज एटलस।''[14]

नगरीकरण और औद्योगीकरण के कारण प्रकृति संतुलन और पर्यावरण को भी भारी क्षति चहुँच रही है। लोग प्रकृति से दूर होते चले जा रहे हैं। प्रकृति के सुरम्य–स्थल मशीनीकरण के कारण कम होते जा रहे है। पश्चिम देशों में विकसित मशानी युग के दुष्परिणाम अब आने प्रारम्भ हो गये हैं। इसके संदर्भ में कवि ने लिखा है–

''तुमने बेहिसाब
चर डाले सारे सुगन्ध–जंगल
डीफोलिएट झौंक नंगधड़ंग किये पेड़
ढोक लिया नदियों का पानी
बना दिया
स्मुद्रों को तेल का कुप्पा
झीलों को गटर और पोखर
कारखानों के फुजले का
भरे ताजी हवाओं में गंधक के बादल
धूप पर इलेक्ट्रो–प्लेटिंग
चंदनी पर डियोडोरेण्ट वार्निश।''[15]

इलेक्ट्रोन सभ्यता के विकास ने मानव को सेण्ट्रल–हीटिंग, कम्प्यूटर,टी.वी., कार, जैसी सुविधाएं तो दी हैं,परन्तु साथ ही मुनाफाखोरी, हत्या,लूटमार, बलात्कार, उन्मुक्त सेक्स, भोग प्रधान मनोवृत्ति, बार, कैबरे डांस, वैश्यावृत्ति आदि को बढ़ावा भी दिया है। इसके कारण समसामयिक परिवेश दूषित होता जा रहा है। मानव की संवेदना शून्य होने के

साथ–साथ उसके मूल्य भी खत्म होते जा रहे हैं, जिसके कारण बच्चे हर रोज बदलते माता–पिता के कारण विकृत और अव्यवस्थित और संस्कारहीन होकर हिंसक होते जा रहे हैं। बालापराध का प्रतिशत बढ़ता जा रहा है। सभ्यता और संस्कृति के आदर्श पुस्तकों तक सीमित होकर रह गये हैं। माथुर के काव्य में इस तरह की सांकेतिक योजना उन्हें समसामयिक भावबोध से जोड़ देती है। भगवान का नाम भी अब तो तस्कर और व्यापार का साधन बन गया है। ईश्वर का अवतरण भी दुख,से मुक्ति के स्थान पर पाखंड, फरेब, शोषण, हत्या, साम्प्रयायिकता और दमन का प्रतीक गया है। कवि भावनाएं निम्न पंक्तियों के द्वारा समझी जा सकतीं है–

''–उसने कहा
दुनिया में सिर्फ रंग मेरा हो
मुझसे फरक
सारे रंग–खत्म हों
लाखों सिर कट गए
धड़ों को उठाए लोग
भाग पड़े
भक–भक निकलते खून के फव्वारों से
रंगने लगे
हर मकान,गांव,नगर
देश,देश।''[16]

'भीतरी नदी की यात्रा' में संकलित कविता 'सोनार देश!सलाम!' में भी समसामयिक परिवेश की सशक्त अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। पाकिस्तान सरकार ने बंगला देश के मुक्ति संग्राम को ताकत और बन्दूक के बल पर मिटाने की बर्बरता का बहुत ही संवेदनशील और मूर्त वर्णन कवि ने किया है–

''देखों मधुमति नदियों का सारा भरा पानी
गोलियों छिदे जिस्मों की छलनी से
बहता है धार–धार
रंग गयी है निचुड़ती
बड़े प्यार से बनायी
हरी,लाल और सुनहली
नयी तीन–रंग पद्मा की साड़ी
ढाका मलमल के खून–रंगें थान
जिन्हें पहन है
हर बच्चा,बूढ़ा,जवान
ऐसी क्रांति में जोड़ लो।
हमारा भी नाम ।''[17]

'शाम की धूप' कविता में मध्मवर्गीय कर्मचारियों के अभाव भरे जीवन के चित्र माथुर की कविताओं में देखे जा सकते हैं। सारे दिन ऑफिस में कर्मचारी फाईलों में अपने गड़ाये रहता है। घर जाते समय भी फाईले उसका पीछा नही छोड़ती हैं। घंटियां,फाईलें,कटोरदान,टोकरी आदि शब्द मध्यमवर्गीय नौकरीपेशा व्यक्ति के जीवन का अभिन्न अंग बन गइ हैं–

''घंटियां बज रही हैं रिक्शों की
बीसियों साईकलों की पांतें

कैरियर,टोकरी या हैंडिल में
कुछ के खाली कटोरदान बंधे
कुछ में हैं फाईलें हर दिन भूखी
जो न कभी खत्म हुई दफ्तर में।''[18]

महंगाई हर युग की समस्या रही है। महंगाई के कारण चीनी,गुड़,नमक,दाल आदि को प्राप्त करना गरीब आदमी के लिए मुश्किल हो गया है। केरोसिन तेल और घी तो जैसे सपना ही बनकर रह गया है। अभावग्रस्त जीवन गरीब के लिए किसी अभिशाप से कम नहीं है–

''है न कपड़ा कहीं पहनने को
दूध घी का यहाँ पे चर्चा क्या
जब न चीनी,न गुड़,न दाल–नमक
हो गया स्वप्न किरासिन का तेल
उनका अब ख्याल है इतिहास की बात।''[19]

भौतिकवादी युग में मनुष्य ने मशीन का रूप ले लिया है। किसी के दुःख से किसी को काई लेना–देना नहीं रह गया है। सबको अपनी–अपनी पड़ी है। सामाजिकता नाममात्र की रह गई है–

''अपनी–अपनी पड़ी सभी को
कौन पूछता यहां किसी को
रात और दिन
इंतजार में
कहीं कभी भी
कुछ हो सकता,
ऐसे ही सब चलता आया
ऐसे ही सब कुछ है चलता।''[20]

अर्थाधारित सामाजिक जीवन बिखराव के रास्ते पर पहुंच गया है। व्यक्ति टूटन,घुटन,बेचैनी,संत्रास,निराशा में जीने को मजबूर है। चिड़चिड़ा होकर आदमी अपना आक्रोश दूसरों पर निकालता है। इंसान का जीवन अपाहिज और अवसादग्रस्त हो गया है। उसकी दशा क्रोनिक के मरीज जैसी हो गई है–

''जीवन अपाहिज है
रोगी असाध्य बहुत साल से
पलंग पर है
चल फिर न सकता है
उठता है, फिर लेट जाता है
करवट बदलता है
किसी तरह
चैन नहीं पड़ता है
हाथ पैर मारे
पर कर कुछ न सकता है
बान की मामूली खाट सी
घिरी बंधी दुनियां है

उतने में पाटी से पाटी तक
रहना है
सहना है।''[21]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि माथुर के काव्य में यत्र–तत्र आधुनिक बोध एवं सामाजिक यथार्थ की चेतना बखूबी से देखने को मिल जाती है। 'खत' नामक कविता में खत की समसामयिता सिद्ध की गई है। 'पृथ्वीकल्प' तथा 'कल्पान्तर' काव्य रचनाएं तो पूरी तरह युगानुकुल बोध को ध्यान रखकर रची गईं हैं। इसी प्रकार 'युग–सांझ','दीवारें–', 'रात, फुटपाथ और गीत', 'लौह–मकड़ी का जाल', 'तूफान एक्सप्रेस की रात', 'खोये वर्तमान की तलाश', 'इतिहास', 'समयातीत क्षण', 'एक अधनंगा आदमी' आदि अनेक कविताएं समसामयिकता की भाव भूमि पर रची गई हैं।

संदर्भ सूची–

1. गिरिजा कुमार माथुर, एशिया का जागरण, धूप के धान,पृ.9
2. गिरिजा कुमार माथुर,व्यक्तित्व का मध्यान्तर,शिला पंख चमकीले,माथुर,पृ.80
3. गिरिजा कुमार माथुर,भटका हुआ कारवां,मैं हूँ वक्त के सामने, माथुर,पृ.21
4. गिरिजा कुमार माथुर,विक्षिप्तों का जुलूस, मैं हूँ वक्त के सामने,पृ.26–27
5. गिरिजा कुमार माथुर,जलते प्रश्न,मैं हूँ वक्त के सामने,माथुर,पृ. 36
6. गिरिजा कुमार माथुर,कल्पान्तर, माथुर,भूमिका
7. गिरिजा कुमार माथुर,कल्पान्तर,माथुर,पृ.32
8. गिरिजा कुमार माथुर,कल्पान्तर,माथुर,पृ.60
9. गिरिजा कुमार माथुर,लौह देश,कल्पान्तर,माथुर, पृ.84
10. गिरिजा कुमार माथुर,आग और फूल,धूप के धान,माथुर,पृ.47
11. गिरिजा कुमार माथुर,नगर–बोध,साक्षी रहे वर्तमान,पृ.45
12. गिरिजा कुमार माथुर,युगबोध,जो बंध नहीं सका,पृ.8
13. गिरिजा कुमार माथुर,नया नगर,शिला पंख चमकीले,पृ.71
14. गिरिजा कुमार माथुर,हब्स देश, शीला पंख चमकीले,पृ.58
15. बीसवां अंधकार,भीतरी नदी की यात्रा,पृ.65
16. गिरिजा कुमार माथुर,पशु परम्परा,साक्षी रहे वर्तमान,पृ.73
17. गिरिजा कुमार माथुर,सोनार देश! सलाम!!,भीतरी नदी की यात्रा,पृ.57
18. गिरिजा कुमार माथुर,धूप के धान,पृ.26
19. गिरिजा कुमार माथुर,शाम की धूप,धूप के धान,पृ.27
20. गिरिजा कुमार माथुर,राम भरोसे, मैं वक्त के हूँ सामने, पृ.113
21. गिरिजा कुमार माथुर,क्रानिक का मरीज, शिला पंख चमकीले,पृ.22